International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 8, pp: 439-441 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

नीतिशास्त्रों में राजा के कर्त्तव्य

डॉ पूनम कुमारी (संस्कृत धर्मशास्त्र)
Ma. Phd. Shanskrit

Date of Submission: 15-10-2020 Date of Acceptance: 02-11-2020

नीति का विचार व्यापक होता है। ऐसे व्यापक नीति विचार को नीति शास्त्र कहते है। नीतिशास्त्र का अर्थ है कर्माकर्म विवेक। समाज में व्यक्ति ,परिवार, जाति , वर्ग राष्ट्र भिन्न भिन्न घटक होते है । उसमे व्यक्ति जाति और संस्था को कैसा व्यवहार करना चाहिए। कैसे रहना चाहिए इस संबंध में कतिपय विशेष नियम होते है। जिसे नीति शास्त्र कहते है। यह धर्म का भी एक भाग है। हमारे समाज में आदि काल से त्याग, संयम, तप, दया, क्षमा, शांति, सत्यनिष्ठा इत्यादि नैतिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को ही बंदनीय पूजनीय माना जाता है और विभिन्न दुगुर्णे से भरे व्यक्ति निषेध माना जाता है

आचार्य को प्रथम धर्म कहा गया है आचार प्रथमो धर्म :-
जैसा कि श्रीकृष्ण ने भी कहा है-
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाण कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।
अर्थात श्रेष्ठ व्यक्ति जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरूष भी उसका अनुसरण करते है।

अतः राजतांत्रिक व्यवस्था हो या प्रजातात्रिक राजा एवं मंत्रीगणों को गुण ऐसा होना चाहिए कि प्रजा उसका अनुकरण कर सके। समाज मे सदगुणो को प्रचलन हो सके।

आचार्य कौटिल्य का सुझाव है कि राजा के आचरण पर ही उसके कर्मचारियो का आचरण निर्भर है | यदि वह प्रमादी होगा तो उसके कर्मचारी भी प्रमाद करने लगेगा। यह भी असंभव नहीं कि प्रमादी राजा के कर्मचारी उसके शत्रु से सन्धि करके एक दिन उसका सर्वस्व ही समाप्त कर डालेगा। इसके विपरीत यदि राजा उदार, परिश्रमी और विवेकषील होगा तो उसका सारा भृत्यवर्ग उसके गुणों का अपनायेगा। अतः राजा को चाहिए कि यत्नपूर्वक वह अपनी उन्नति की ओर सचेष्ट रहे। ऐसा तभी संभव है यदि उसकी कार्य व्यवस्था का ढंग निष्चित रूप से विचारपूर्वक सम्पन्न होता रहे।
राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न रखना है। राजा का अपना कोई हित या अभीष्ट नहीं होना चाहिये | वह तो प्रजा की सुख सुविधाओं एवं प्रजा कें अभीष्टों की व्यवस्था करने वाला एक व्यवस्थापक मात्र है। जैसा कि कहा गया हैः
"प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानाम् च हितोहितम्।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजान तु प्रिंय हितम् ।।

अर्थात प्रजा के सुख में ही राजा का सुख और प्रजा को हित में ही राजा का हित है। अपने आप को

अच्छे लगानेवाले कार्यो को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजा जनों को अच्छे लगने वाले कार्यो के सम्पादन करने में है।

"तस्मात् नित्योत्यितो राजा कुर्मादर्थानुषासनम् |
अर्थस्य मूलमतथनमर्थस्य विपर्ययः।

अर्थात् राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार संबंधी तथा राज्य सम्बधी कार्यो को उचित रीति से पूरा करें। उद्योगशील होकर वह व्यवहार संबंधी तथा राज्य सम्बन्धी कार्यो को उचित रीति से पूरा करे। उद्योग ही अर्थ का मूल है एवं इसके विपरीत, उद्योगहीनता ही अनर्थो तो देनेवाला है।

अतः राजा के चारित्रिक गुणों के सम्बन्ध में कौटिल्य ने जो सीमाएँ निर्धारित की है उन तक पहुँचना सामान्य व्यक्ति के वश की बात नही हैं। दैवबुद्धि बलवान धार्मिक सत्यवादी तत्व वक्ता कृतज्ञ उत्साही शीघ्र कार्य

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 8, pp: 439-441 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

करनेवाला समर्थ समान्तो से युक्त दृद्धनिष्वयी और विद्या व्यसनी आदि राजा के चरित्र के प्रधान गुण है। अपने आचरण को विशुद्ध बनाने के लिए राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसको परस्त्री, परधन तथा हिंसा आदि कार्य से दूर रहना चाहिए। अधिक शयान करना तथा लोभ,मिथ्या:व्यवहार एवं अनर्थकारी कार्यो को त्याग देना चाहिए। धर्म एवं अर्थ को क्षति न पहुँचाने वाले कार्यो का सेवन करना चाहिए। यदि वह धर्म अर्थ और काम इन तीनों में से किसी एक का अधिक सेवन करता है तो अपने लिए वह ना" कारी अर्थ को पैदा करता है।

प्राचीन राजाओ को देखकर यह बात स्पष्ट होती है कि हिन्दू राजा की स्थिति एक वेतनभोगी सेवक से बढकर कुछ न थी। राजा और राजपरिवार सेवक से बढकर कुछ न थी। राजा और राजपरिवार का वेतन निर्धारित था, जो कि देश की आय एवं देश की स्थिति पर निर्भर था। राजा को यद्यपि स्वामी कहा जाता था, किन्तु उनकी अधिकार की सीमाएँ अपराधियों को दमन तक ही सीमित था। वह सार्वजनिक बहुमत से बँधा होता था। उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व और कोई व्यक्तिगत रूचि
नहीं हुआ करती थी। जैसा कि आचार्य शुक्र ने अपनी शुक्रनीति के 5 वे अध्याय के 42 नीतिसार में कहते हैं-
:राज्यवृक्षस्थ नृपतिमूल स्कन्धाष्व मन्त्रिण:।
शास्त्रा: सेनाधिपा: सेना: पल्लवा: कुसुमानि च।

अर्थात राजा राज्यरूपी वृक्ष के मूल है, मंत्रि परिषद उसका धड़ या स्कन्ध है, सेनापति उसकी शाखाएँ हैं, सैनिक उसके पल्लव है प्रजा उसके पुष्प है, देश की सम्पन्तता उसके फल है तथा समस्त देश उसका बीज है।

इसलिए यदि राजा न हो तो प्रजा एवं राष्ट् की स्थिति क्या हो सकती है यह स्पष्ट हो जाती है हिन्दु राजनीति की दृष्टि से राज्य एक ऐसी पुनीत थाती है जो राजा को इसलिए सौपी जाती है कि वह प्रजा की सुख समुद्धि एवं कल्याण कामना के लिए सतत् प्रयत्नषील रहे। प्रत्येक राज्याभिषेक के समय राजा को यह कह कर राज्य की थाती को सौपा जाता है कि यह राष्ट्र तुम्हें सौपा जाता है। तुम इसके संचालक नियामक और उतरदायित्व के दृढ़ वाहन कर्ता हो यह राज्य तुम्हें कृषि के कल्याण सम्पन्नता प्रजा के पोषण के लिए दिया जाता है। इसलिए राजा के लिए प्रथम प्रतिज्ञा राष्ट्रहित और प्रजा की हित कामना ही हुआ करती है महमति शुकाचार्य जी भगवान श्रीराम को सर्वोपरि नीतिमान बताते हुए कहे है कि इस पृथवी पर भगवान श्रीराम के समान दूसरा नीतिमान राजा नहीं हुआ, क्योंकि उनकी नीति के द्वारा वानरों ने भी भलीभाति उनकी भूत्यता स्वीकार कर ली थीः

नृरामसदूषो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत् |
सुमृत्यता तु यन्नीत्या वानरैरपि स्वीकृता।।

इस नीतिवचन द्वारा शुकाचार्य जी यह संदेष देते है कि राजाओं को राम के समान नीतिमान बनना चाहिए और प्रजा को राम के आचरणो का अनुकरण करना चाहिएं इस में सबका कल्याण है

विदृरनीति के दूसरे अध्याय में मख्यतः राजधर्म का विवचन हुआ है यो तो इसक उपदेश कई समृतिकारों ने विस्तार से किया है, किन्तु विदुर तो स्वयं राजपरिवार के सदस्य एवं समसामयिक राजनैतिक घटनाओं तथा कूटनीतिपूर्ण षड्यत्रो के साक्षी होने के कारण राजधर्म का प्रवचन करने के अधिकार थे। वे बतलाते है कि राजा के लिए धर्म ही सर्वोपरि पालनीय एवं आचरणीय है

: धर्मेण राज्यं वन्दित् धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां क्षियं प्राप्प न जहाति न हींयते |।।

अर्थात् राजा के लिए उचित है कि धर्म से ही राज्य प्राप्त करें धर्म से ही उसकी रक्षा करे, क्योंकि धर्ममूलक राज्यों को पाकर न तो राजा ही राजलक्ष्मी को त्यागता है और न लक्ष्मी ही उसे छोड़ती है। राजा के गुणो के अनुसार ही उसके सहायको के गुण भी हो जाते है अतः राजा को सदैव गुणवान होन का ही आदर्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

राजा केवल राजकाुल में उत्पन्न हाने के कारण ही प्रजा का आदर प्राप्त नहीं करता अपितु उसके गुण ही उसे आदर प्रदान करते हैं।

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 8, pp: 439-441 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

अतः राजा का प्रथम कर्तव्य राष्ट्रहित तथा प्रजाहित कामना ही होना चाहिए। हिन्दूओं की एकराजता का यह महान आदर्ष जिसका एकमात्र उदेश्य प्रजा की भलाई था जों संसार के तत्कालिन राजनीति के इतिहास में अपना अनन्य स्थान रखता है इस एक राजा के शासन की अनेक प्रणालिया प्रचलित थी जेसे राज्य महाराज्य अधिपत्य और सर्वाभौम शासन प्रणाली का विकास आगे चलकर चकवर्ती शासन प्रणाली के रूप में विकसित हुई उसमे हिमालय से लेकर समुद्र तक सीधे उतर-दक्षिण एक हजार योजन के चक्रवर्ती क्षेत्र माना जाता है। ये शासन प्रणालियाँ भी आगे आगे बदलती रहीं, किन्तु उन सभी में प्रजा कल्याण की भावना सदा ही बनी रही।

आज के लोकतांत्रिक शासकीय व्यवस्था में जो सत्ता के शीर्ष पर हो वही राजा की भूमिका निभाता है इसलिए राजा के सन्र्दभ मे जो बाते कही गई है वह आज के शासको पर यथावत लागू होती है आज की शासकीय स्थिति कुछ राज्यों में अति दयनीय है। परन्तु दुर्भाग्य से सत्तासूख भोग रहे वहॉ के शासको को दण्डित करने वाला कोइ नहीं है। शासक का पहला कर्त्तव्य है कि वह भययुकत समाज की रचना करें-- भययुकत निरीह-निरपराध प्रजा के लिए न कि अपराधियों के लिए दुर्भाग्य से आज हमारे देष में अपराधी को सजा देने का कार्य त्वरित एवं निर्णायक तरीके से नहीं हो रहा है। जब दण्डित हाने का भय समाज में रहता है तब लोग में अपराध करने का साहस सामान्यतः नहीं होता है। समाज में सुरक्षा और निष्चिन्तता की भावना व्याप्त रहती है। लोग उचित-अनुचित के विवेक के साथ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर पाते है। अतः समाज पर शासन करने का दायित्व जिन पर हो उनका कर्तव्य है कि वे अनुचित कार्यो में लिप्त लोगो को दण्डित करे | ऐसा कर आम जन को सुरक्षा का भरोसा दे।